

दंडारन लोकनाट्य का रंगशिल्प

राजेश्वर सायलू बोलचेटवार

पीएच.डी शोधार्थी

दलितआदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

दंडारन एक लोककला का प्रमुख लोकनाट्य परम्परा है, जो मुख्य रूप से महाराष्ट्र के मराठवाडा, खानदेश, विदर्भप्रान्तों में एवं तेलंगाना के आदिलाबाद जिले में दंडारन प्रचलित है। आंध्र लोग महाराष्ट्र के अनेक जिलों में वास्तव करते हैं। उसी तरह नांदेड जिले के किनवट तालुका में भी आंध्र कुछ सालों से वास्तव करते हैं। इन आंध्र लोगों में दंडार या दंडारन लोकनाट्य प्रचलित है, जो कि प्राचीन काल से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। “दंडारन मराठवाडामें विविध नामों से भी जाना जाता है। जैसे दंडार, दिंडार, दिंडारन, दिंडारनी, ऐसे विविध नाम से सुपरिचित है। परभणी जिले के जिन्तुर तालुके में आंध्र लोग दिंडार कहते हैं, तो हिंगोली एवं नांदेड जिले में आंध्र दंडारन नाम से पहचानते हैं। लेकिन विदर्भ के बहुत से आंध्र लोग इस लोकधर्मीनाट्य को दंडारण इस नाम से पहचानते हैं। “दंडारन में जीवन की अनुकृति और उसका हास्य व्यंग्य रूप ही केंद्रीत है। यह जीवन के सहज अनुकरण का अवबोधन देने वाली विधा है। दंडारन मूलतः नक़ल है। नक़ल आंध्र समाज की और अपने परिवेश का अनुकरण ही नहीं है बल्कि हास्य और व्यंग्य की अदभुत लोकनाट्य का रूप है। दंडारन एक ओर पैरोडी है तो दूसरी ओर ह्यूमर और सटायर भी है।

रंगमंच:

भारतीय लोकनाट्य रंगमंच की एक अपनी सुदीर्घ परम्परा है, जो अपनी संस्कृति को संजोते आ रही है। लोकमंच किसी बंधन या नियमों के दबाव में न होने के कारण सहज एवं सरल होते हैं। कहा जाता है कि लोकनाट्यों का रंगमंच स्थायी न होकर अस्थायी ही होता है। जैसे शास्त्रीय मंच की परिकल्पना या रंगकल्प पहले से किया जाता है, लेकिन लोकनाट्यों को रंगमंच पर जब खेलना होता है तब ही मंच बना लिया जाता है। लोकनाट्यों का मंच तीनों ओर से खुला रहता है। इसी तरह ‘दंडारन’ लोकनाट्य का मंच भी तीनों ओर से खुला रहता है।

मंच के सामने वाले हिस्से में और अन्य दो तरफ भी दर्शक बैठते हैं। दंडारन के लिए कोई विशिष्ट मंच की आवश्यकता नहीं होती है। दंडारन को कहीं भी प्रस्तुत या मंचित किया जाता है। कोई मंदिर के सामने की खाली जगह पर, किसीके आँगन में, किसी पेड़ के नीचे, किसी चौराहे आदि पर नीचे जमीन पर ही खेला जाता है। नृत्य के साथ ही जमीन पर इसको भीड़ की गोलाई में संपन्न किया जाता है। एक तरह से यह भीड़ के मध्य में ही उसका हिस्सा बनाकर प्रस्तुत होता है। मंच दिखने में तो साधारण ही होता है। कभी कभी इसे एक मंडपीय आकार का भी बना दिया जाता है। जब मंच तीनों ओर से खुला है तो पीछे की ओर एक कोई रंगीन या डिजाइन वाला कपड़ा लगाया जाता है, जिससे दर्शक तीनों ओर से बैठकर दंडारन का आनंद लेते हैं।

‘दंडारन’ लोकनाट्य के मंच पर कथा को पात्रों द्वारा आपसी संवादों में ही दृश उपस्थित कर दिया जाता है। कभी जंगल में शिकार करने का वर्णन हो, किसी राजा का महल हो, कोई बगीचा हो, स्वर्गलोक हो, नरक लोक हो, बाजार हो, इन्द्रपुरी का वर्णन आदि।

दंडारन की विशेष बात यह है कि, इसमें दृश्य योजना नहीं होने के कारण पर्दे गिराने एवं प्रकाश योजना चालू बंद करने की आवश्यकता नहीं होती। मंच पर रंग व्यवस्था व रूपसज्जा की जरूरत नहीं पड़ती। मंच पर ही गीत, संगीत एवं नृत्य के माध्यम से एक स्थान से दुसरे स्थान तक पहुँच जाते हैं, और नृत्य रोखकर संवाद बोलते हैं। उदाहरण के लिए जब गोपियाँ दही दूध बेचने के लिए बाजार जाती हैं, तो सब गोपियाँ अपने संवाद के बाद दही दूध लेकर घर से निकलती हैं। रास्ते से जा रही होती है तब गीत संगीत और नृत्य चलते हैं

गीतसमाप्त होते ही स्थान बदल जाता है और संवाद शुरू होता है। इस प्रकार दंडारन का पारम्परिक मंच व्यवस्था है।

अभिनय:

“अंतःकरण के भावों को और बाह्य पदार्थों को प्रकाशित करने वाली अंगोपांगदि की जो विशिष्ट रचना या भावभंगी होती है उसे अभिनय कहते हैं।”

दंडारन में गीत, नृत्य और अभिनय के मध्यम से कथाप्रवाह आगे बढ़ता है। इस रंगशैली में स्त्री पात्रों एवं पुरुष पात्रों का अभिनय समान रूप से उल्लेखनीय है। नृत्य और गीतिकथा में माहिर सुरीली, ऊँची और खुली आवाज वाले स्त्री पात्र (पुरुष) कालकारो का अभिनय-कौशल, गीतिकथन और तद्रूप नृत्य गतियाँ देखते ही बनती है। दंडारन का कलाकार अपने ही अंदाज में ‘बोल’ कहता है, उस पर तो दर्शक समुदाय झूम उठता है। ढोलककी थाप एवं हारमोनियम के सुर पर जब वह नृत्य करता है और अपने सहज अभिनय रंग प्रस्तुति के आकर्षण से दर्शक मंत्रमुग्ध होते हैं। भरतमुनि ने अभिनय के प्रमुख चार भेद किये हैं--आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। अभिनय कि दृष्टी से दंडारन के खेलों में, आंगिक और वाचिक की प्रधानता है। दंडारन का कलाकार जब ऊँची तान और बंकिम मुद्रा बनाकर अपना बोल प्रस्तुत करता है, तब दंडारन का दर्शक पुलकित हो उठता है। मंच पर और प्रेक्षक के बीच की दूरियाँ कतम हो जाती हैं और एक गहरा तादात्म्य स्थापित होता है।

दंडारन के अभिनय की अपनी एक विशेषता है। उदाहरण के लिये कलाकार संगीत के धुन पर गीत गाते हुए नृत्य के साथ मीलों लम्बी यात्रा तय कर लेते हैं। स्थान परिवर्तन की सूचना अथवा संकेत देने का प्रश्न नहीं उठता। अयोध्या से काशी तक आने के लिए राजा हरिश्चंद्र को मंच पर संगीत के विशेष गत पर आठ दस नृत्य गतियाँ करनी पड़ती हैं। ढोलककी विशेष गत और नृत्य करते हुए कलाकार कि ठुमकन जब ठिठक कर रुक जाती है, तब स्थान परिवर्तन कि कल्पना सहज ही में दंडारन का प्रेक्षक कर लेता है। अभिनय कि दूसरी विशेषता यह है कि आवश्यकतानुसार किसी एक पात्र कि भूमिका को मंच का दूसरा कलाकार निभा लेता है। ----

दंडारन में अभिनय का स्वर एक ओर तो सामूहिक मनोभावों एवं संवेदनाओं को स्थापित करने में लगा रहता है, और दूसरी ओर उसके अभिनय में हाव भाव, मुद्राएँ आदि ही मनोभावों को व्यक्त कराती हैं। भाषा के स्थान पर मौन रहकर पात्र संकेतों एवं आंगिक चेष्टाओं से ही अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति करते हैं। पात्रों के वाचिक अभिनयों पर

काव्यात्मकता छायीरहती है। यदि जब गद्यमयता आती है तो वार्ता आदि का प्रयोग किया जाता है। शृंगार पूर्ण स्थलों पर कुछ अश्लील एवं भोंडी भाव-भंगिमाएं तक अभिनय में आ जाती हैं, किन्तु फिर भी दर्शक पर उनका बुरा प्रभाव नहीं पड़ने पाता। अभिनयकासबसे महत्वपूर्ण रूप आंगिक और वाचिक ही है। आहारी एवं सात्विक नाम के अंगों का प्रयोग दंडारन में नहीं किया जाता। दंडारन में सभी पात्र जन सामान्य की अनुभूतियों को उभरने में सिद्धहस्त होते हैं कि दर्शक उनके अभिनय पर अभिभूत होकर रस मग्न हो जाता है।

संगीत:

“विभिन्नस्वरों के समूह के विशिष्ट रचना को संगीत कहते हैं, जिसके श्रवण मात्र से प्राणी का चित्त प्रसन्न हो जाता है। संगीत रत्नाकर के अनुसार संगीत की परिभाषा इस प्रकार है--:नृत्यं गीतं वाद्यं चेति त्रयं संगीतमुच्यते।” अर्थात् नृत्य, गीत एवं वाद्य इन तीनों के समावेश को संगीत कहा जाता है।“

लोकनाट्यों में लोकगीतों, लोकवाद्यों एवं लोकनृत्यों का विशेष समावेश होता है। ये अलग अलग कलाएं होने पर भी यह एक दुसरे पर आश्रित होती हैं। कोई भी ऐसा लोकनाट्य नहीं है जिसमें इन तीनों का संगम दिखाई न देता हो। नाट्य में लोकगीतों की धुन पर लोकवाद्य का प्रयोग एवं नृत्य करना अपने आप में एक कला है।

दंडारन का संगीत नृत्य अभिनय प्रधान होता है। शास्त्रीय संगीत से वह भिन्न है इसलिए, दंडारन की धुनों और रंगतों में लोच होता है। बदन का झटका सहने और संभालने की शक्ति दंडारन के संगीत में होती है। लटके और झटके के कारण दंडारन के संगीत में रवानगी बनी रहती है। इस संगीत में आलाप का महत्व अधिक रहता है, जिसका कंठ जितना खुला हुआ होता है, वहकलाकार अपने अलाप, लोच और गायकी से दर्शक समुदाय का उतना ही मन मोह लेता है।

दंडारन का संगीत पौरुष प्रधान है। कारण स्पष्ट है कि दंडारनलोकनाट्य में अभिनय पुरुष ही करते हैं। इसलिए पुरुष का ही अधिकार रहा है। दंडारन की गायकी हारमोनियम के सुर और ढोलक एवं मृदंग के थाप पर निर्भर होती है। दंडारन गायक के स्वर हारमोनियम के सुर पर स्थिर होते हैं और उसका नृत्य अभिनयढोलक की थाप पर।

- अंततःदंडारन लोकनाट्य में संगीत की महत्ता को देखते हुए यह कह सकते हैं कि एक झरने की तरह है, जो पहाड़ों से फुटकर पत्थरों और चट्टानों से टकराता हुआ स्वच्छता से मनमानी दिशा मेंआगे बढ़ता है। कभी कभी ये नाट्य तो लोकसंगीत की लय पर ही खेला जाता है। इसलोकनाट्यके संगीत के उपयोग में आनेवाले स्वरावाद्यों एवं ताल वाद्यों का अपना एक महत्व है।

नृत्य:

“छंद के सहयोग से सुललित अंग भंगिमाओं की सहायता से मन के भावों को प्रकाशित करने को ही नृत्य कहा जाता है।“

दंडारन लोकनाट्य में पात्र नाटक के नमन के बाद सामूहिक रूप में नृत्य करते हुए मंच को नृत्यमय कर देते हैं और अपनी नृत्य अदायगी से दर्शकों का मन मोह लेते हैं तथा संवाद समाप्त होते ही नृत्य करने लगते हैं। कभी-कभी संवाद बोलकर स्वयं ही नृत्य के द्वारा दर्शकों से अपनी बात कहता है। कथा के मध्य में एकरसता को तोड़ने के लिये भी नृत्य केभिन्न भिन्न शैलियों को अपनाते हैं जैसे नागिन नृत्य, फुगडी नृत्य, सर पर निरंजन रखकर उसके ऊपर घड़ा रखकर नृत्य करना, झुककर नृत्य करते हुए जमीन से मुह के द्वारा पैसे उठाना आदि।



सरपर भरा हुआ पानी का घड़ा लेकर नागिन नृत्य करते हुए।

दंडारन के रंगमंचपर आज आधुनिकता एवं धार्मिक भजनोंके प्रभाव के आ जाने से इसमें कई तरह के प्रयोगों का भी नया अंजाम दिया जा रहा है। जैसे फ़िल्मी गीतों पर नृत्य प्रधानता का अंश समाविष्ट हो गया है। परन्तु फिर भी नृत्य की प्रधानता को इस लोकनाट्य को कम नहीं आँका जा सकता है।

गीत :

“सुर, अर्थयुक्त शब्द एवं ताल के सहयोग से मन के भावों को प्रकाशित करने को गीत कहते हैं।” इस सन्दर्भ में डॉ. शिवकुमार मधुर अपनी पुस्तक मध्यप्रदेश का लोकनाट्य ‘माच’ में लिखते हैं--“गीति नाट्य का मूल आधार है ‘गीत’। नाट्य का सम्पूर्ण ताना बाना संगीत पर निर्भर होता है। गीत ही प्राण होते हैं। गीतों में बंधकर कथा आगे बढ़ती है। गीतों कि सरलता, सुबोधता और सरसता पर ही नाट्य प्रस्तुति की सफलता निर्भर रहती है।” इस कथन के आधार पर कह सकते हैं कि दंडारन के खेलों का कथानक गीतों में बंधकर खुलता है। मंच पर मंगलाचरण और नमन वंदना से लेकर खेल समाप्ति पर जय बोलने तक गीतों का समावेश रहता है। इन गीतों में नव रस समाहित होते हैं।

संवाद:

शास्त्रीय बन्धनों से लोक शैलियाँबंधी नहीं रहती, लोककी अपनी शैली रही है। दंडारन में जो संवाद शैली अपने गई है, उसे हम लोक शैली कह सकते हैं। दंडारन में लोक शैली की प्रधानता है। दंडारन का पात्र स्वगत कथन कभी नहीं करता। दंडारन के पात्र परस्पर गीति कथन से कथा को विस्तार देते हैं। संवादों के गीतात्मकता के कारण ही दंडारनको गीतिनाट्य भी कह सकते हैं। इन संवादों का प्रभाव इतना अधिक रहता है कि जिससे दर्शक झूम उठता है।

संवादों को प्रस्तुत करने की अपनी क्षमतानुसार, दंडारन का कलाकार ताजगी उत्पन्न कर देता है। दंडारन के खेलों में सवाल-जवाब की चासनी को बार बार चखने के बाद भी दंडारनप्रेमियों का मन नहीं भरता। संवाद योजना के कारण दंडारन में सदैव नयापन रहता है।

पद्य गद्य संवादों के माध्यम से पात्रों का परिचय और चरित्र प्रस्तुत करने में दंडारन के कलाकारों को बड़ी सफलता मिलती है। जैसे पति पत्नी का झगडा इस सामाजिक नक़ल में संवाद गीतात्मक रूप में चलता है

पति-पत्नी झगडा

पति : तू मेरे शादी की अस्तूरी
मैं तेरा मालिक
रहती है छह छह महीने मायके
चल अब री ससुराल
न कर अब नखरे भारी
तू मेरी शादी की अस्तूरी

पत्नी : ओजी ओजी मालिक
मैं ना आउंगीससुराल
कामधंधा है बहुत भारी
मिलता नहीं जी खाने को
रीत ही तुम्हारे घर की निराली
सासफिरती है गाँव भर
ससुर बैठता है चबूतरे पर
बहूसेंकती है रोटी
ननंदकी बातें ही सिर दर्दभरी
मैंना आउंगी जी ससुराल

पति : अरी अरी मालकिन
न कर आनाकानी
मैं भरूंगा पानी
तू मेरी रानी
अरी अरी मालकिन
न कर आनाकानी.....

- पद्यबद्ध संवाद शैली के साथ गद्य संवादों का प्रचालन भी है। मुख्य रूप से दंडारन पद्य गद्य दोनों शैलियों में चलनेवाला लोकनाट्य है।

इस प्रकार 'दंडारन' के संवाद बहुत छोटे तथा सरल होते हैं। कहीं कहीं तो प्रश्न या उत्तर दो तीन शब्दों में ही सीमित रहता है। लम्बे कथोपकथनों का इसमें नितांत अभाव होता है। ग्रामीण जनता में लम्बे संवाद सुनाने के लिए धीर नहीं होता। अतः नाटकीय पात्र अपने संवादों को अत्यंत संक्षिप्त रूप में ही प्रयोग में लाते हैं।

वाद्यः

“लोकनाट्यों का संगीत कंठ और वाद्य संगीत पर आधारित होता है। इनमें वाद्यों का महत्व अनूठा है। वाद्यों के आभाव में लोकनाट्यों की कल्पना अधूरी लगती है।

वाद्योंकी शंकार और मानव मन की मधुरता और संघर्ष शीलता के प्रतीक रहे हैं। तांडव में प्रलय विप्लव की स्थिति का अनुकरणात्मक प्रदर्शन हो अथवा लास्य में सृजन की मधुर अभिव्यक्ति, दोनों ही स्थितियों में वाद्य तन्मयता की सृष्टि करते हैं।”

लोक जीवन के विविध पक्षों की कलात्मक रूप से सरलता पूर्वक मार्मिक अभिव्यंजना नाट्य-कला द्वारा ही की जाती है। नृत्य, संगीत और अभिनय की त्रिवेणी का संगम ‘लोकनाट्य’ का स्वरूप लोकधर्मी होता है। लोकनाट्य जनजीवन की परम्परा, उसकी संस्कृति, लोक मानस एवं लोक विश्वास होता है। यही कारण है कि लोकनाट्य पर किसी व्यक्ति तथा विशिष्ट सृजनकर्ता का नाम नहीं होता है। सामूहिक समाज द्वारा ही वे बनाये जाते हैं। भारत देश बहुत बड़ा देश है, जिसमें अनेक भाषा भाषी, अनेक संस्कृति, अनेक सम्प्रदाय एवं समाजों का समावेश है। स्वाभाविकता से ही इस देश में अनगिनत लोक कथा, लोकगीत, लोकसंगीत, लोकनृत्य तथा अनेक लोकनाट्य एवं लोक वाद्य यंत्र विद्यमान है। “सुर एवं ताल के सहयोग से, यंत्र की सहायता से जब मन के भावों को व्यक्त किया जाता है उसे वाद्य कहते हैं।

वाद्यों के प्रकार बताया गया है जिसमें मुख्या रूप से तंतुवाद्य, वायुवाद्य एवं चर्मवाद्य हैं। दंडारन लोकनाट्य के संगीत का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दंडारन में मुख्यतः चर्मवाद्य और वायुवाद्य की प्रधानता है। जो निम्न प्रकार के वाद्ययंत्र ‘दंडारन’ लोकनाट्य में प्रयोग करते हैं ढोलक, मृदंग, हारमोनियम, झांजर, टाल बांसुरी, घुंगरू आदि

वेशभूषा:

भारत के लोकनाट्यों के कलाकार, वाहक तथा समर्थक जन सीधे सादे ही हैं। ग्रामीण जनता अधिकांश अपने काम में व्यस्त रहती हैं। जब जब उन्हें आवकाश का समय मिला वे नृत्य, गीत, कथाओं नाट्यों द्वारा अपने मनोरंजन करने में व्यतीत करते रहे हैं। सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक उत्सवों में नृत्य, गीत संगीत आदि महत्वपूर्ण तत्व रहते हैं। जिस प्रकार कंठ संगीत को सुललित तथा मधुर करने के लिये मानव को विभिन्न प्रयास करना पड़ता है उसी तरह से देह संगीत या नृत्य को सुदृश, सुन्दर तथा रुचिपूर्ण करने के लिये मनुष्य के मन में सदैव से लालसा रही है। अतः मनुष्य ने कालांतर में अपने सुन्दर एवं सुसज्ज वस्त्र, गहने, तथा अलंकरण से देह को सज्जित करने के लिये वस्त्र एवं आभूषणों का निर्माण एवं प्रयोग किया। पूजा अनुष्ठान, पर्व त्यौहार, उत्सव, मेला, यात्रा, विवाह तथा अन्य मुख्य कार्यक्रमों के समय विशिष्ट प्रकार से एवं सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों का प्रयोग करते हैं।

“देह को आच्छादित करने के लिये पोशाक परिच्छद या आवरण की आवश्यकता होती है, परन्तु उत्सवादी में नृत्य के समय जिन वस्त्रों का प्रयोग किया जाता है वे साधारण पोशाक से कुछ भिन्न होते हैं। यह पोशाक कुछ अधिक ही कला कौशल पूर्ण तथा सौंदर्य पूर्ण होते हैं। पोशाक आवरण के बारे में यह कहना अत्यंत आवश्यक है कि विभिन्न अंचल में सामाजिक रुचि तथा प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल ही पोशाक व्यवहृत होते थे जिन्हें वे स्वयं ही बनाते थे।”

दंडारन लोकनाट्य के पात्रों की वेशभूषा में गाँव या देहाती उपकरणों का ही उपयोग होता है। पुरुष पात्रों के लिए धोती, कुर्ता, बंडी, पेन्ट, कमीज, पायजामा, सलवार, और पात्रों के अनुरूप जैसे राजा हो या किसी पौराणिक पात्र की भूमिका हो तो साधारण रूप में सरपर कोई मुकुट, मोरपंख, याराजा का मुकुट आदि वेशभूषा रहती है। साथ ही विदूषक जैसे पात्रों के लिए रंगीन कपड़ों का भी उपयोग होता है। पुरुषपात्र ही स्त्री की भूमिका निभाते हैं, स्त्रीपात्रों के लिए नवारी साड़ी,

बलाउज ,सलवारघूँघट, पात्रों के अनुरूप वेशभूषा होती है। साथ ही पात्रों के अनुरूप गहने, घुंघरू, चश्मा, घड़ी, लाठी, बन्दूक या शरीर पर कोई चित्र बना लेना आदि।

रूप सज्जा :

आदिम काल में मनुष्य ने अपने देह को फूलों पत्तों के माध्यम से ढकने का प्रयास किया उसी समय से मनुष्य ने अनेक प्रकार के वस्तुओं से अपने देह को सजाने का प्रयास करता आ रहा है। “नग्नता के युग से क्रमशः मनुष्य ने प्रस्तर युग में, फिर बल्कल युग में, और अंत में वस्त्रयुग में पदार्पण किया।” इसी तरह मनुष्य जैसे जैसे आगे बढ़ता गया उसे प्रकृति में अनेक पदार्थ मिलते गए। मनुष्य अनुकरण प्रिय प्राणी होने के कारण वह प्रकृति से अनुकरण करने लगा वह पेड़ पौधों के पत्तों से पशु के खाल से, पक्षियों के पंखों से, फूलों से, शिपियों, अन्य रसमय रंगों से अपने देह को सजाने लगा। इस सन्दर्भ में मुकुंद चटर्जी अपने पुस्तक ‘लोकनृत्य: ग्रामीण नृत्यकला में लिखते हैं कि “एक ओर जब देह पर आवरण आया, साथ ही आभरण आया अर्थात् (गहना) आया। आवरण आभरण के साथ ही आया अलंकरण प्राकृतिक से मनुष्य अपने देह को आच्छादित करते थे। पक्षी के पंखों से देह को सजाते थे, पत्र पुष्पों से सुसज्जित होते थे तथा उल्क चित्रण से अंग चित्रित करते थे।”

“धातु द्रव्यों से देह मंडित करते थे। नाना प्रकार के फूलों के रस से अधरों (होठों) को रंजित करते थे। आँखों में अंजन या काजल लगाते थे। मोहन जोदड़ो की खुदाई से प्राप्त मिट्टी की वस्तु सामग्री, धातु निर्मित यंत्र आदि तथा धातु से बने अलंकारों के जो चिन्ह मिलते हैं उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अति प्राचीन वैदिक युग से ही अलंकार तथा श्रंगार की रीति प्रचलित थी। भरतमुनिके नाट्यशास्त्र में नायक नायिका एवं नाटक के पात्र पात्रियों के पोशाक, अलंकरण तथा रूप सज्जा के बारे में नियम तथा श्रंगार पद्धति का वर्णन है।” इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य देहसज्जा आदिम काल से ही करता आ रहा है। इसी का विशिष्ट रूप नृत्य, नाट्य में भी दिखाई देता है। इस परम्परा को लोकनाट्यों में भी देखा जा सकता है। लोकनाट्यों में रूप सज्जा का विशिष्ट स्थान रहता है।



दंडारन के कलाकार रूप सज्जा करते हुए।

उपर्युक्त कथन से कह सकते हैं कि ‘दंडारन’ लोकनाट्य में रूप सज्जा अपना महत्त्व रखता है। दंडारन के पात्र वस्त्र के आलावा गले में पहने वाले तरह तरह के हार, मंगल सूत्र, चांदी के हार, मोतियों के हार, सोने जैसे दिखनेवाले बाजारू हार, कान में पहनेवाले आभूषण, बाली, झुमके, नाक में नथ और फुल, हाथों की चूड़ियाँ, अंगुली में अंगूठी पाँवमें पायल, बाजू बांध आदिसाथ ही देह को सज्जित करने के लिए आँखों में काजल, गाल पर पाउडर, होठों पर लिपस्टिक, माथे पर

बिंदी या सिंदूरहाथों में मेहंदी आदि अन्य वस्तुओं के रूप में गेरू, हल्दी, कृत्रिम बाल, मूँछ, दाढ़ी, वाटरकलर, फूलपत्ते आदि अनेक वस्तुओंका उपयोग करते हैं।

भाषिक अभिव्यक्ति :

प्रत्येक व्यक्ति, समूह कीस्वयं की भाषा है। हमारा भारत देश विविधता में एकता का प्रतीक है। देश में अनेक धर्म, जाति जनजाति, पंथ, सम्प्रदाय, आचार विचार, रीती रिवाज, रुढी परम्परा, वेशभूषा के भिन्नता के साथ ही भाषाई भिन्नता देखने को मिलती है।

लोकनाट्यों की भाषा बड़ी सरल तथा सीधी साधी होती है। जिसे कोई व्यक्ति आसानी से समझ सकता है। जिस प्रदेश में या क्षेत्र में इन नाटकों का अभिनय होता है, वहां के कलाकार लोग प्रायः वहां की ही क्षेत्रीय बोली (रीजनल डैलेक्ट) का प्रयोग करते हैं। दंडारन लोकनाट्य भी इसी प्रकार क्षेत्रीय बोली पर आधारित है। दंडारन की भाषा मुख्य रूप से महाराष्ट्र प्रदेश के अंतर्गत मराठवाडा विभाग, नांदेड जिले के किनवट तालुका (तहसील) में जो मराठी बोली जाती है उसका प्रभाव है। यह क्षेत्र तेलंगाना राज्य से सटा होने के कारण तेलगू भाषा का प्रभाव भी दिखाई देता है। यह क्षेत्र निजाम रियासत के अंतर्गत रहने कारण उर्दू मिश्रित हिंदी का प्रभाव भी है। इधर तेलंगाना राज्य का आदिलाबाद जिले में जो मराठी बोली जाती है उसका प्रयोग दंडारन में किया जाता है। इस तरह भाषा प्रभाव से अभिनय समस्त जनता के लिए बोधगम्य हो जाता है। इनकी भाषा में किसी प्रकार की सजावट या बनावट नहीं होती। दैनिक क्रिया कलाप में जिस भाषा का वे व्यवहार करते हैं उसी का प्रयोग अभिनय करते समय भी किया जाता है। ये प्रयः-पद्य-मद्य-का-उपयोग करते हैं और बीच-बीच में गीत भी गाते हैं।

संदर्भ:

1. मराठवाड्यातील आंधजमातीचे लोकसाहित्य 245 .सं .पु .राजेश धनजकर .डॉ .ले -
2. लोकनृत्यप्र रीता चक्रवर्ती ,मुकुंद भट्टाचार्य ग्रामीण नृत्यकला : ु सं36
3. वहीं32-
4. वहीं33-
5. वहीं33-
6. मध्यप्रदेश का लोकनाट्य मच32 .सं.पु .शिवकुमार मधुर .डॉ-
7. वहीं34-सं.पु ,
8. वहीं33-
9. वहीं23-
10. वहीं26-
11. वहीं26-
12. वहीं26,27-